राजस्थान उच्च न्यायालय

जयपुर बेंच

एस.बी. सिविल रिट याचिका संख्या 2981/1990

1. रुदाराम पुत्र श्री सुरजाराम,
2. बंशीधर पुत्र रामनाथ,श्री सोला के पौत्र ,
3. रामेश्वर पुत्र श्री सोला,
4. श्रीमती. बसंती पुत्री श्री सोला पत्नी श्री हनुमान प्रसाद, निवासी सिंघाना तहसील खेतड़ी, जिला झुंझुनू

----याचिकाकर्ता

बनाम

1. राजस्व मंडल, अजमेर।
2. देवस्थान विभाग जरिये आयुक्त देवस्थान विभाग, उदयपुर ।
3. श्री बृषभानजी उर्फ ब्रजनाथ जी का विग्रह जरिये पुजारी ग्राम पपुरना
4. देवता श्री गोपालजी ,जरिये पुजारी, ग्राम पपुरना निवासी, जिला पपुरना । झुंझुनूं.

----उत्तरदाता

याचिकाकर्ता (ओं) के लिए : श्री एम.एम. रंजन, वरिष्ठ अधिवक्ता. साथ श्री शुभम् शर्मा

उत्तरदाता (ओं) के लिए : श्री कमलाकर शर्मा, वरिष्ठ अधिवक्ता। साथ श्री मधुसूदन राजपुरोहित श्री सोमित्र चतुर्वेदी, डिप्टी जीसी

माननीय श्रीमान. जस्टिस अवनीश झिंगन

<u>आदेश</u>

आरक्षित तिथि : 06/01/2025
घोषित तिथि : 21/01/2025

1. यह याचिका दिनांक 12.03.1984 के संदर्भ आदेश तथा दिनांक 23.01.1990 के राजस्व मण्डल, अजमेर (संक्षेप में 'बोर्ड') के आदेश को रद्द करने की मांग करते हुए दायर की गई है, जिसमें संदर्भ की अनुमति दी गई थी।

2. याचिकाकर्ताओं द्वारा स्थापित मामला यह है कि ग्राम पपुराना में स्थित खसरा संख्या 3498, 3499, 3500, 3501, 3502, 3505, 3506, 3507, 3509, 3510, 3511, 3512, 3518, 3519, 3520, 3521, 3522, 3604, 3605, 3606, 3607, 3609, 3610, 3611/1, 3611/2, 3612, 3613, 7062/3497, 7063/3614, 7064/3621, 7065/3465 की भूमि मंदिर श्री गोपालजी के नाम पर दर्ज थी। (इसके बाद मंदिर के रूप में संदर्भित)। याचिकाकर्ताओं के पूर्वज संवत 2012 से पहले भूमि पर खेती के कब्जे में थे। देवस्थान विभाग के अनुरोध दिनांक 28.10.1980 के आधार पर, कलेक्टर ने संदर्भ दिया। बोर्ड ने दिनांक 23.01.1990 के आदेश के तहत संदर्भ को स्वीकार कर लिया और निर्देश दिया कि प्रश्नगत भूमि को मंदिर के नाम पर फिर से दर्ज किया जाए। बोर्ड ने माना कि संवत 2012-15 और 2018-21 के राजस्व रिकॉर्ड में, प्रश्नगत भूमि पुजारी राधाकृष्ण के माध्यम से मंदिर के नाम पर पंजीकृत थी। याचिकाकर्ता (इस याचिका में) उस आधार का खुलासा करने में विफल रहे जिस पर संवत 2026-29 के लिए जमाबंदी याचिकाकर्ताओं के पूर्वजों सुरजा राम और सोला के नाम पर दर्ज

की गई थी। इसके अलावा, राजस्थान काश्तकारी अधिनियम, 1955 (संक्षेप में 'अधिनियम') के प्रावधानों के आलोक में मंदिर भूमि के खातेदारी अधिकार कब्जे के आधार पर नहीं दिए जा सकते।

3. याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अधिनियम के लागू होने से पहले याचिकाकर्ताओं के पूर्वजों के पास भूमि का कब्जा था और खातेदारी अधिकार उनके पक्ष में थे। तर्क यह है कि संवत 2024-26 के लिए जमाबंदी की प्रविष्टियों को सही करने के लिए तेरह साल बाद संदर्भ दिया गया था और इसे देरी के आधार पर खारिज कर दिया जाना चाहिए था।

4. प्रतिवाद के अनुसार, भूमि मंदिर की है और याचिका के साथ संलग्न अनुलग्नक-1 से 4 तक के राजस्व अभिलेखों के अनुसार भी, भूमि मंदिर के नाम दर्ज है। संवत 2024-26 की जमाबंदी सक्षम प्राधिकारी के किसी आदेश के बिना ही त्रुटिपूर्ण रूप से बदल दी गई थी।

5. बोर्ड द्वारा दर्ज किया गया निष्कर्ष कि संवत 2012-15 और 2018-21 की जमाबंदी में, विचाराधीन भूमि पुजारी के माध्यम से मंदिर के नाम पर दर्ज की गई थी, अभी भी निर्विवाद है। यह भी निर्विवाद है कि विचाराधीन भूमि शुरू से ही मंदिर के नाम पर दर्ज थी। याचिकाकर्ताओं ने संवत 2026-29 की जमाबंदी के आधार पर भूमि पर दावा किया था और दलील दी थी कि 1995 से पहले खेती का कब्जा याचिकाकर्ताओं के पूर्वजों का था।

6. अधिनियम की धारा 19 खुदकाश्त के किरायेदारों और उप-किरायेदारों को अधिकार प्रदान करने से संबंधित है।

7. धारा 19(1) के अनुसार, खुदकाश्त का काश्तकार या किसी भूमि का उप काश्तकार, जिसका नाम वार्षिक रजिस्टर में दर्ज हो या न हो, को राजस्थान काश्तकारी (संशोधन) अधिनियम, 1959 के लागू होने की तिथि से ऐसी भूमि के खातेदारी अधिकार प्रदान किए जाएंगे, लेकिन इस अध्याय के अन्य प्रावधानों के अधीन और अपवाद बाग भूमि है। अधिकार इस शर्त के अधीन प्रदान किया जाएगा कि भूमि राज्य सरकार द्वारा धारा 180(1)(क) के तहत निर्धारित न्यूनतम क्षेत्र या उस अधिकतम क्षेत्र से अधिक न हो, जहां से ऐसे व्यक्ति को धारा 180(1) के खंड (घ) के तहत बेदखल किया जा सकता है। धारा 19 का प्रावधान खातेदारी अधिकार प्रदान करने के लिए अपवादों का प्रावधान करता है। खंड (i) में प्रावधान है कि यदि भूमि का कोई भाग धारा 46 में वर्णित किसी व्यक्ति के पास है तो खातेदारी अधिकार या सुधार के अधिकार प्राप्त नहीं होंगे।

धारा 46(1) में निम्नलिखित व्यक्तियों की गणना की गई है:

(क) नाबालिग, या

(ख) पागल, या

(ग) मूर्ख, या

(घ) अविवाहित, तलाकशुदा या अपने पति से अलग हुई महिला, या विधवा, या

(ङ) अंधेपन या अन्य शारीरिक अक्षमता या दुर्बलता के कारण अपनी खेती करने में असमर्थ व्यक्ति, या

(च) संघ के सशस्त्र बल का सदस्य, या

(छ) जेल में नज़रबंदी या कारावास झेल रहा व्यक्ति, या

(ज) ऐसा व्यक्ति जो पच्चीस वर्ष से अधिक आयु का न हो, जो किसी मान्यता प्राप्त संस्थान में अध्ययनरत छात्र हो।

8. यह ज़मीन मंदिर की है और राजस्व अभिलेखों में दर्ज है। कानून में यह स्पष्ट रूप से स्थापित है कि विग्रह एक अवयस्क माना जाता है। इस संबंध में **श्री गणपति देव मंदिर ट्रस्ट बनाम बालकृष्ण भट और अन्य (2019) 9 एससीसी 495** में सुप्रीम कोर्ट के निर्णय का संदर्भ लिया जाना चाहिए, जिसमें यह माना गया था:

> *7. xxx xxx xxx*
>
> *अत, यह सर्वमान्य है कि किसी हिंदू मंदिर में देवता को अवयस्क माना जाता है, और शेबैत, अर्चक, आदि या ऐसे मंदिर के प्रबंधक/ ट्रस्टी के रूप में कार्यरत व्यक्ति मूर्ति के संरक्षक के रूप में कार्य करते हैं और उसकी ओर से सभी लेन-देन करते हैं। हालाँकि, शेबैत या अर्चक केवल मूर्ति के लाभ के लिए कार्य करने के लिए बाध्य है। श्री ठाकुर राधा बल्लभजी (उपरोक्त) मामले में, इस न्यायालय ने निचली अदालतों के इस निष्कर्ष की पुष्टि की कि देवता के प्रबंधक द्वारा किसी तीसरे पक्ष को की गई बिक्री, जो मूर्ति के लाभ की आवश्यकता के लिए नहीं थी, देवता पर बाध्यकारी नहीं होगी, और उपासक या अन्य पक्ष जो मंदिर के प्रबंधन में सहायता कर रहे थे, ऐसी बिक्री को रद्द करने के लिए आवेदन कर सकते हैं।*

मूर्ति मंदिर श्री नियमाजी लक्ष्मणगढ़ बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य (2008) 3 आरएलआर 632 *में राजस्थान उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने माना:*

> *7. देवता शाश्वत अवयस्क हैं और देवता के अधिकारों की रक्षा न्यायालयों द्वारा की जानी चाहिए, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय के उनके माननीय न्यायाधीशों ने ए.ए. गोपालकृष्णन बनाम कोचीन देवस्वोम बोर्ड, (2007) 7 एससीसी 482 के पैरा 10 में इस प्रकार कहा है:—*
>
> *"देवताओं, मंदिरों और देवस्वोम बोर्डों की संपत्तियों को उनके ट्रस्टियों/अर्चकों/शबैतों/कर्मचारियों द्वारा संरक्षित और सुरक्षित रखने की आवश्यकता है।*
>
> ऐसे कई उदाहरण हैं जहाँ मंदिरों, देवताओं और देवस्वोम बोर्डों की संपत्तियों के प्रबंधन और सुरक्षा का दायित्व सौंपे गए व्यक्तियों ने स्वामित्व या किरायेदारी, या प्रतिकूल कब्जे के झूठे दावे पेश करके ऐसी संपत्तियों को हड़प लिया है और उनका दुरुपयोग किया है। यह संबंधित अधिकारियों की निष्क्रिय या सक्रिय मिलीभगत से ही संभव है। "फसलों को खा जाने वाली बाड़" जैसी हरकतों से सख्ती से निपटा जाना चाहिए। सरकार, बोर्डों/ट्रस्टों के सदस्यों या ट्रस्टियों, और भक्तों को इस तरह के किसी भी हड़पने या अतिक्रमण को रोकने के लिए सतर्क रहना चाहिए। धार्मिक और धर्मार्थ संस्थाओं की संपत्तियों को गलत दावों या दुरुपयोग से बचाना और उनकी रक्षा करना न्यायालयों का भी कर्तव्य है।"

प्रताप राम बनाम राजस्थान राज्य मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने **सचिव, देवस्थान विभाग और अन्य के माध्यम से 2024 एससीसी ऑनलाइन राज 975** में रिपोर्ट की गई, निम्नानुसार माना:

> *14. यह न्यायालय आगे यह भी मानता है कि कानून के स्थापित प्रस्ताव के अनुसार, मंदिर (देवता) सदैव अवयस्क है और पुजारी/ट्रस्टी केवल इसके देखभालकर्ता के रूप में कार्य करता है।*
>
> **** *** ***"*

9. अधिनियम की धारा 19 और 46 को संयुक्त रूप से पढ़ने पर प्रभाव यह है कि अवयस्क की भूमि के खातेदारी अधिकार खुदकाश्त काश्तकार या उप-काश्तकार को प्रदान नहीं किए जा सकते, चाहे उनका नाम वार्षिक अभिलेख में दर्ज हो या नहीं।

10. एक अन्य पक्ष यह है कि याचिकाकर्ता ने रिट याचिका में भी यह प्रतिपादित करने में विफल रहा कि संवत 2026-29 की जमाबंदी किस आधार पर याचिकाकर्ताओं के पूर्वजों के पक्ष में दर्ज की गई थी। दूसरे शब्दों में, सक्षम प्राधिकारी के आदेश के बिना ही जमाबंदी में प्रविष्टियाँ बदल दी गईं।

11. बोर्ड ने संदर्भ को सही रूप से स्वीकार किया और आदेश दिया कि प्रश्नगत भूमि को मंदिर के नाम पर पुनः दर्ज किया जाए।

12. यह तर्क कि संदर्भ को सीमा के आधार पर खारिज कर दिया जाना चाहिए था, में कोई दम नहीं है।

13. राजस्थान भू-राजस्व अधिनियम, 1956 की धारा 82 संदर्भ के लिए कोई सीमा निर्धारित नहीं करती है। कानून में यह स्थापित है कि संदर्भ उचित समय के भीतर किया जाना चाहिए और यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है। **2008 एससीसी ऑनलाइन राजस्थान 843** में प्रकाशित **छैल सिंह एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य** मामले का संदर्भ दिया जाना चाहिए। आदेश का प्रासंगिक भाग नीचे पुनः प्रस्तुत है:-

> *"27.* इस संबंध में हम फिर से दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत मामलों का उल्लेख कर सकते हैं, जैसा कि ऊपर सूचीबद्ध है, और इन निर्णयों को पढ़ने पर, हम जो निष्कर्ष निकालते हैं, वह यह है कि अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की ओर से उद्धृत इनमें से किसी भी निर्णय में, यह स्पष्ट रूप से निर्धारित नहीं किया गया है कि किस समय अवधि के भीतर संदर्भ दिया जा सकता है, धारा *232* में अधिनियमित समय सीमा के लिए किसी प्रावधान की अनुपस्थिति के आधार पर, उन निर्णयों को छोड़कर, यह माना जाता है कि यह केवल उचित समय के भीतर किया जा सकता है, यह अनुचित देरी के बाद नहीं किया जा सकता है, इत्यादि। इस संबंध में भरोसा किए गए सबसे मजबूत निर्णय आनंदी लाल के मामले और सीतु साहू के मामले में दिए गए निर्णय हैं। बेशक, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए कुछ निर्णयों में, जिनमें उत्तम नामेदो महाले बनाम विट्ठल देव और अन्य, एआईआर *1997* एससी *2695* में रिपोर्ट किए गए और एससी पराशर के मामले में शामिल हैं, सीमा निर्धारित होने के कारण, किसी भी समय कार्रवाई की जा सकती है। अन्य सभी निर्णयों में व्यावहारिक रूप

से एकमत यह मत है कि उचित समय के भीतर संदर्भ दिया जा सकता है। जहाँ तक इस न्यायालय का संबंध है, चिमन लाल मामले में पूर्ण पीठ के निर्णय द्वारा यह मामला सुलझ गया कहा जा सकता है, जिसमें आनंदी लाल के निर्णय को स्पष्ट रूप से खारिज कर दिया गया है, और चिमन लाल के मामले में भी यह माना गया है कि शक्ति का प्रयोग उचित अवधि के भीतर किया जाना चाहिए, लेकिन फिर चिमन लाल के मामले में पैरा-*25* में कुछ और दिशानिर्देश निर्धारित किए गए हैं। हम लाभप्रद रूप से पैरा-*25* को उद्धृत कर सकते हैं, जो इस प्रकार है:

25. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, हमारा मत है कि जहाँ विधायिका ने अपनी बुद्धिमता से कोई अवधि निर्धारित न करना उचित समझा हो, वहाँ सीमा निर्धारित करना न्यायालय का कार्य नहीं है। जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने अजायब सिंह मामले *(*उपरोक्त*)* में कहा है, न्यायालय केवल कानून की व्याख्या करते हैं, कानून नहीं बनाते। न्यायालय की अध्यक्षता करने वाले न्यायाधीशों के व्यक्तिगत विचारों को इस प्रकार बढ़ा-चढ़ाकर पेश नहीं किया जा सकता कि उन्हें कानून की इस प्रकार व्याख्या करने का अधिकार दिया जाए जो विधायिका द्वारा जानबूझकर छोड़े गए विधान के समान हो। अतः, हमारा मत है कि जब *1961* के नियम *272* के अंतर्गत विधायिका द्वारा कोई सीमा अवधि निर्धारित नहीं की गई है, तो हम कोई सीमा अवधि निर्धारित नहीं कर सकते कि *1961* के नियम *272* के अंतर्गत प्राधिकारी द्वारा पुनरीक्षण शक्तियों का प्रयोग कितने समय में किया जा सकता है। जब कोई सीमा अवधि प्रदान नहीं की गई है, तो हमारी राय में इसका प्रयोग एक उचित समय के भीतर किया जाना चाहिए और यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा, जैसे*; (i)* जब पक्षकारों द्वारा

धोखाधड़ी की गई हो; *(ii)* आदेश निजी पक्षों द्वारा गलत बयानी या सार्वजनिक अधिकारियों के साथ मिलीभगत से प्राप्त किए गए हैं; *(iii)* आदेश सार्वजनिक हित के खिलाफ हैं; *(iv)* आदेश उन अधिकारियों द्वारा पारित किए गए हैं जिनके पास कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है; *(v)* आदेश अधिकारियों द्वारा नियमों या अधिनियम के प्रावधानों के स्पष्ट उल्लंघन में पारित किए गए हैं; और *(vi)* शून्य आदेश या आदेश सार्वजनिक नीति के खिलाफ या अन्यथा होने के कारण शुरू से ही शून्य हैं। सार्वजनिक नीति के सामान्य कानून सिद्धांत को लागू किया जा सकता है जहाँ भी कोई कार्रवाई सार्वजनिक हित को प्रभावित करती है / अपमानित करती है या जहाँ बड़े पैमाने पर जनता को चोट पहुँचाने की अनुमति देने का हानिकारक परिणाम स्पष्ट है। इस प्रकार के मामलों में, पुनरीक्षण शक्तियों का प्रयोग किसी भी समय प्राधिकरण द्वारा या तो स्वप्रेरणा से या जब भी ऐसे आदेश उनके ध्यान में लाए जाते हैं, किया जा सकता है।

29. xx xx xx xx

इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता कि संदर्भ हेतु आवेदन विलम्ब से प्रस्तुत किया गया है। दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा उद्धृत विभिन्न निर्णयों के मद्देनजर, जिनमें यह निर्धारित किया गया है कि उचित समय क्या होगा, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर भी विचार किया जाना आवश्यक है, ताकि यह पता लगाया जा सके कि आवेदन अनुचित रूप से विलंबित तो नहीं किया गया है। और उपरोक्त से हम पाते हैं कि आवेदन को अनुचित रूप से विलंबित नहीं कहा जा सकता।

14. विचाराधीन भूमि देवता की है, जो एक अवयस्क है और मानवीय हस्तक्षेप के बिना कानूनी उपचार प्राप्त करने से वंचित है। जमाबंदी में सुधार का संदर्भ देवस्थान विभाग के अनुरोध पर किया गया था। सरकारी विभाग की प्रक्रिया और कार्यप्रणाली को स्थायी अवयस्क को उपचारविहीन नहीं बनाना चाहिए। विशेषकर तब, जब विचाराधीन भूमि राजस्व अभिलेखों में मंदिर के नाम पर जारी थी और बिना किसी आधार के बदल दी गई थी। याचिकाकर्ता के पक्ष में की गई म्यूटेशन प्रविष्टि अधिनियम की धारा 19 का उल्लंघन थी। याचिकाकर्ता कब्जे के आधार पर देवता से संबंधित भूमि के खातेदारी अधिकारों का दावा नहीं कर सकता था। धारा 19(1) का प्रावधान, जो अधिनियम की धारा 46 में सूचीबद्ध व्यक्तियों द्वारा धारित भूमि के खातेदारी अधिकार प्रदान नहीं करने का अपवाद बनाता है, ऐसे व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा के लिए एक लाभकारी कानून है। उल्लिखित कारणों से यह नहीं कहा जा सकता कि संदर्भ आवेदन उचित समय के भीतर नहीं किया गया था।

15. आक्षेपित आदेशों में कोई विधिक त्रुटि नहीं है, बल्कि विकृतियाँ तो बिल्कुल नहीं हैं। रिट याचिका निरस्त की जाती है।

16. सभी लंबित आवेदन निरस्त किए जाते हैं।

(अवनीश झिंगन),जे

सिंपल कुमावत/258

क्या रिपोर्ट योग्य है: **हाँ**

"अस्वीकरण- इस निर्णय का अनुवाद स्थानीय भाषा में किया जा रहा है, एवं इसका प्रयोग केवल पक्षकार इसको समझने के लिए उनकी भाशा में कर सकेगे एवं यह किसी अन्य प्रयोजन में काम नहीं ली जायेगी। सभी अधिकारिक एवं व्यवहारिक उद्देश्यों के लिए उक्त निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही विश्वसनीय माना जायेगा एवं निश्पादन एवं क्रियान्वयन में भी उसी को उपयोग में लिया जायेगा।"



Tarun Mehra

Advocate